हुसैन (अ0) के अज़ादारों के नाम

अज़ादारी के दिन इक़दाम व अमल के दिन

मौलाना रज़िउद्दीन हैदर साहब
संस्थापकः यादगारे हुसैनी इण्टर कालेज, इलाहाबाद

अज़ीज़ाने मुहतरम! यह मुहर्रम का ज़माना है। मकरूहाते दुनिया से अपने आप लगाव कम हो गया है। दुनिया की चाहत और अपनी ग़रज़ के काले बादल छट गये हैं और हक़ व सदाक़त की राह की कभी न मिटने वाली क़ुर्बानी का नूर अपनी पूरी चमक के साथ हर तरफ फैला हुआ है आसमान व ज़मीन, अतराफ व जवानिब, फिज़ा माहौल, घर बाहर सब ग़म से भरे नज़र आते हैं। सच तो यह है कि जब दिल मुतास्सिर होता है तो सारी दुनिया इसी रंग में रंग जाती है। अज़ाए हुसैन (अ0) एक काएनाती असर है जो मुनज़्ज़म कोशिशों और मुकम्मल साज़िशों के बावजूद आज तक न मिटाया जा सका बल्कि उलटी तदबीरों से उसके मुज़ाहेरों में हमेशा अकेलापन और नयापन ही पैदा होता रहा। बात यह है कि जो ग़म बाहरी माहौल से पैदा होते हैं वह बाहरी इलाज से दूर भी हो जाते हैं मगर जो ख़लिश, जो तड़प इन्सान के अन्दर नफ़्स की गहराइयों से फ़ितरी तौर पर उभरती है उसका दूर करना बहुत मुश्किल है। अगर यह ज़िद की जाए कि जिस्म के अन्दर दौड़ते हुए ख़ून की परेशान लहरों और सीने के अन्दर धड़कते हुए दिल की मुसलसल हरकत को क़रार व सुकून मिल जाए तो ऐसी बात मज़ाक़िया होगी और ऐसे शख़्स को अक़्ल से ख़ारिज समझा जायेगा। इसलिए कि इस मुतालबे में जिन्दगी की उस बुनियादी जड़ ही पर चोट लग रही है जिसके बग़ैर ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं! कर्बला का वाक़ेआ इन्सानियत के जिस्म में उसी दौड़ते हुए ख़ून और धड़कते हुए दिल की जगह पर है जो हमारी हक़ीक़ी व इन्सानी ज़िन्दगी का ज़ामिन है जब तक इस ज़मीन पर एक इन्सान भी बाक़ी रह जायगा वह इस भारी दौलत को हमेशा सीने से लगाए रहेगा।

ग़मों की दुनिया में हुसैन के ग़म की अहमियत

इन्सान और ग़म का अज़ल से साथ है इसके बाहमी ताल्लुक़ पर हर बड़े शायर, फ़लसफ़ी और मुफ़क्किर ने अलग–अलग उनवानात से अपने ख़यालात का इज़हार किया है और इतना कुछ कह दिया है कि अब मज़ीद किसी इज़ाफे की गुन्जाइश नहीं मालूम होती, यह ज़िन्दगी ग़मों का मजमुआ है ऐसा मजमुआ जिसमें कोफ़्त भी है और कैफ़ भी। ग़म भी है और ख़ुशी भी और जिससे असर लेने और मज़ा लेने का नाम है हयात! हर इन्सान किसी न किसी ग़म में ज़रूर फंसा है। दुनिया का ग़म हो या ज़िन्दगी का ग़म, रोज़गार का ग़म हो या इश्क़ का ग़म, माल व मन्सब का ग़म हो या आल व औलाद का ग़म, ऐश का ग़म हो या गुज़री उम्र का ग़म वग़ैरा–वग़ैरा! इनमें हर ग़म ऐसा है जो इन्सान की रगे हयात से जोंक की तरह चिमटा हुआ उसका ख़ून चूस रहा है। ग़मों की इस आबाद

दुनिया में ग़मे हुसैन भी एक ग़म है लेकिन इसकी हैसियत अलग है। इसका अन्दाज़ जुदा है। इसके असरात और हैं और इसके नतीजे सबसे अलग हैं, दुनिया का हर ग़म हमारे ही ख़ून पर पल रहा है। हर लमहा हयात मिट रही है और ग़म पर शबाब आ रहा है लेकिन यह ग़मे हुसैन (अ0) रहमत का सरचश्मा है जहाँ ज़िन्दगी के प्यासे आबे हयात पी–पी कर हमेशा सैराबी हासिल कर रहे हैं। यह ग़म हमसे कुछ नहीं माँगता बल्कि इसकी बारगाहे अता से अच्छे अख़लाक़ और इन्सानी बलन्दी का पाक ख़ून हमारे मुर्दा दिलों में दौड़ाया जाता है। जुमूद व बेहिसी का रंग और दुनिया की चाहत व नफ़्स परस्ती का मैल इसी से दूर होता है। इस ग़म का दूसरा नाम है इन्सानियत और इसके मुज़ाहेरे को कहते हैं अज़ादारी, जो इस के फ़ौरन बाद से शुरु होकर अलग–अलग दौर से गुज़रती हुई हमारे ज़माने तक पहुँची है। अब यह आपको इख़्तियार है चाहे इसे तारीख़े इन्सानियत के नाम से पुकारें और चाहे अज़ादारी की तारीख़ कहें। मगर कितने अफ़सोस का मक़ाम है कि एक फ़ायदा और ज़िन्दगी देने वाला ज़रिया सिर्फ़ रस्मों की चहारदीवारी में क़ैद होकर रह गया है और इससे हमने वह असरात हासिल नहीं किये जिनसे इल्मी व अमली तौर पर ऐवाने हयात के सारे कंगरे चमकने लगते!

एक फ़ायदेमंद राय

कुछ अरसा हुआ डाक्टर अल्लामा सैय्यद मुजतबा हसन साहब क़िब्ला कामुनपूरी ने तारीख़े अज़ादारी की तरतीब व तदवीन की तरफ अरबाबे मिल्लत को ध्यान दिलाया था और यह ख़याल ज़ाहिर किया था कि अगर हर शहर, क़स्बे और गाँव में इस काम के लिए कोई एक बन्दा–ए–ख़ुदा तैयार हो जाए और मालूमात का ज़ख़ीरा भी फ़राहम कर ले जिसे बाद में अलग–अलग उनवानों के तहत सलीक़े से सर्फ़ किया जा सके तो इस तरह शीया और अज़ादारी की तारीख़ का काम एक ही वक़्त में बहुत आसानी से तैय्यार हो जायगा और फिर वह कमी दूर हो जाएगी जो मुद्दतों से दिलों में चुटकिया ले रही है।

आज दुनिया की छोटी से छोटी और पस्त अक़वाम ने अपनी क़ौमी तारीख़ की तरतीब का काम ख़त्म कर लिया है। जिनके यहाँ तारीख़ी मालूमात का कोई ज़ख़ीरा न था उन्होंने अपने मफ़रूज़ा रिवायती अफ़सानों और जारी मज़हबी रस्मों की बुनियाद पर अपनी क़ौमी तारीख़ की पूरी इमारत खड़ी कर दी है। मगर वह क़ौम जो न सिर्फ़ हर दौर में तारीख़ की तदरीजी रफ़्तार के हमपल्ला रही है बल्कि कभी–कभी तारीख़ी अवामिल का एक क़ौमी हिस्सा बनकर उसके रास्ते तय करती रही है आज अपनी बेहिसी और नासमझी की की वजह से टूटी–फूटी दास्तान की भी हैसियत नहीं रखती। तारीख़ ने पुराने अफ़सानों तक को अपने दामन में जगह दे रखी है मगर उस क़ौम के किसी कारनामे को क़ौम की हैसियत से कोई मक़ाम अता नहीं हुआ है। अगर इन्साफ़ से देखा जाए तो हयात का वह कौन सा हिस्सा है जो इस मुर्दा क़ौम की बेलौस आबियारी ने नहीं लहलहा रहा है। यह अलग एक मुस्तक़िल मौज़ू है, बड़ा लम्बा चौड़ा कि शिया क़ौम का इल्म व फ़न में बढ़ने और दुनिया की आम तरक़्क़ी की रफ़्तार में कितना हिस्सा है मगर तारीख़ लिखने वाले का क़लम इस जगह पहुँच कर रुक जाता है और वह बड़ी होशियारी से दामन बचाकर गुज़रने की कोशिश करता है। अगर कोई मजबूरी

हो गई और किसी का ज़िक्र ज़रूरी हो गया तो वह बस रवादारी के साथ पर्सनल कामों के नतीजे के तौर पर बयान कर दिया जाता है कुछ ही दिन हुए मशहूर क़लमकार अदीब व शायर फ़लसफी को ग़ैर शिया साबित करने की मुहिम चलाई गई थी तहक़ीक़ व तहरीर पर पूरा ज़ोरे क़लम लगाया जा रहा था मगर यह कोशिश बेकार रही और यह कोशिश आप अपनी मौत मर गई। लेकिन यह सोचने की बात है कि यह सूरते हाल ख़ुद हमारे ही एहसास और अमल के ख़त्म होने का नतीजा है और हम खुद बराहे रास्त इसके ज़िम्मेदार हैं। हमने दुनिया के वाक़ेआत के तूफ़ान को अपने ख़ून के धारों से बार–बार रोक तो दिया है मगर कभी इसका ख़याल नहीं किया कि हमारे लहू की सुर्ख़ी दास्ताने तारीख़ का उनवान भी बन जाए। वक़्त के तारीख़ लिखने वाले ने जब क़लम हाथों में लिया तो हम बेनियाज़ी के साथ गूँगे हो गये और वह निहायत बेदर्दी से या तो हमें नज़रअन्दाज़ कर गया या हमारे रौशन व रंगीन वाक़ेआत को तारीक व दाग़दार बनाकर पेश कर गया जिसकी बिना पर दुनिया हमारे बारे में निहायत ख़तरनाक क़िस्म की ग़लतफहमियों में फंस गई है। यह ज़ालिमाना बर्ताव हमारे उन कारनामों के साथ किया गया जो दूसरे इस्लामी फिरक़ों के साथ एक मुशतरका हैसियत रखते थे मगर अज़ादारी जो ख़ालिसन हमारा क़ौमी वतीरा और मज़हबी फरीज़ा है और जिसे हम शहादत के बाद से अब तक एक अमली एहतेजाज की हैसियत से हर साल मुहर्रम के दिनों में क़ायम किये हुए हैं इसे तारीख़े आलम कोई मक़ाम क्यों देने लगी।

एक ग़ौर तलब बात

मुहर्रम के दिन क़रीब आते ही इश्तेहार व पोस्टर छपने लगते हैं। तक़रीर व तहरीर के ज़रिये अवाम को यह ज़हन नशीन कराने की कोशिश की जाती है कि अज़ादारी बिदअत है, अज़ादारी हराम है, मैं पूछता हूँ कि दुनिया की वाक़ई कितनी फ़ुज़ूल व बेकार रस्में हैं, कितने बकवास काम हैं जिन्हें इन्सान दिन रात करता रहता है मगर कभी किसी इस्लाह करने वाले या इस्लामी दर्द रखने वाले को उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की तौफीक़ नहीं होती और अब तो कुछ वाक़ई ग़ैर इस्लामी मामले जैसे बेपर्दगी, बेहयाई वग़ैरा तो मुसलमानों के समाज का हिस्सा बन रहे हैं और किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती। लेकिन यह ज़माना आते ही हमिय्यते इस्लाम की रग फड़कने लगती है और सारा साज़े अमल बजने लगता है। आख़िर ऐसा क्यों है? इसी से अन्दाज़ा कीजिये कि अज़ादारी सिर्फ कुछ रस्मों के बजा लाने का नाम नहीं है बल्कि ख़ैर व शर की एक मुसलसल पुकार है और हक़ व सदाक़त की बराबर एक ललकार है जिसे माद्दियत के नशे में चूर व मदहोश दुनिया को हर साल सुनाकर होश में लाने की कोशिश की जाती है। यही वजह है कि मुवाफ़िक़ीन से ज़्यादा मुख़ालेफीन इसकी अहमियत का एहसास रखते हैं और इस आवाज़े हक़ को हर क़ीमत पर दबाने की नाकाम कोशिश में लगे रहते हैं।

हम और हमारे असलाफ़

हमारे असलाफ़ ने इस क़यामे अज़ादारी में जानी व माली क़ुर्बानियाँ दी हैं, अपनी हड्डियों की असास पर अपने ख़ून के गारे से इस तामीर को बुलन्द किया है। दुनिया के बदले हुए हालात अब उन क़ुर्बानियों के हमसे तलबगार नहीं हैं अब फ़िक्र और अमल की आज़ादी के माक़ूल दायरे क़ायम हो चुके हैं लेकिन क्या यह भी ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती कि हम बुज़ुर्गों की उन जाँकाहियों

को क़लमबन्द करके दुनिया की तारीख़ के हवाले कर दें। इससे एक ही वक़्त में हमें दो फायदे हासिल होंगे एक तो अज़ा की अहम्मीयत के सिलसिले में क़ौम का मुस्तक़िल किरदार सामने आ जाएगा जिससे पूरी क़ौमी सीरत पर रौशनी पड़ सकेगी। और दूसरे हम अपने बुज़ुर्गों और उनके कारनामों को गए हुए वक़्त से छीन–छीन कर एक नई ज़िन्दगी बख़्शेंगे और इस तरह अपनी सआदतमन्दी और दयानत पसन्दी का सुबूत फ़राहम करेंगे।

मुहर्रम के दिनों में अगर आप इस फरीज़े की तरफ़ ध्यान देने लगे तो मुझे यक़ीन है कि यह काम काफ़ी हद तक इसी साल अन्जाम पा जाएगा। हमारे उलमा व ज़ाकेरीन अगर इसकी अहमियत का एहसास फरमाएँ और जिन जगहों पर ज़ाकिरी के सिलसिले में तशरीफ ले जाएँ वहाँ के हालात बाख़बर हज़रात से पूछ करके क़लमबन्द कर लें तो यह क्या मुश्किल है।

मैं एक नज़री ख़ाका इस सिलसिले में पेश कर रहा हूँ। इसमें ज़रूरत के मुताबिक़ घटाया बढ़ाया भी जा सकता है।

1– बस्ती का नाम, मूरिसे आला कौन थे, कब आए? और कहाँ से आए? अज़ादारी कब और किसने शुरु की?

2– शिया और ग़ैर शिया इमामबाड़े

3– शिया और ग़ैर शिया मुक़र्रिर, मुहद्दिस, मजलिस ख़्वान, तहतुल्लफ्ज़ ख़्वान, मर्सिया ख़्वान, नौहा ख़्वान वग़ैरा।

4– शिया और ग़ैर शिया अहले क़लम, अदीब व शायर जिसने कर्बला के वाक़ेये पर कभी कुछ लिखा हो।

5– अज़ा की रस्मों के दर्जा ब दर्जा ज़माने। तबर्रुकात और शबीहों के तफ़ासील फोटो वग़ैरा।

6– शियों की क़ौमी, मज़हबी, समाजी, अख़लाक़ी, इस्लाही, इक़्तेसादी और सियासी अन्जुमनें।

मुमकिन है यह बात अभी कुछ लोगों की नज़र में अहमियत से ख़ाली हो और वह आसानी के साथ प्रोपेगण्डे की मकरूह लफ्ज़ के साथ ताने दें मगर ज़रा ग़ौर तो कीजिये कि आज जो नुक़ूश आप छोड़ जाएँगे वह सौ, दो सौ, पाँच सौ और हज़ार बरस बाद तारीख़ का कितना क़ीमती सरमाया बनेगा इसका सही अन्दाज़ा भी इस वक़्त हम नहीं कर सकते। आज इस मशीनी और ऐटमी दौर में भी जब इन्सानी तरक़्क़ी के नुक़्त–ए–आग़ाज़ की तलाश की जाती है तो अहदे अतीक़ के उस हिजरी ज़माना से भी गुज़रना पड़ता है जिसका तसव्वुर इस बीसवीं सदी के इन्सानों के लिए हद दर्जा मज़ाक़ है मगर अहले फ़िक्र व नज़र जानते हैं कि अगर तहज़ीबे इन्सानी का यह सिरा न मिला होता तो इरतेक़ा की सारी सलाहियतें आज तक सर बगिरीबाँ रहतीं। हिजरियात से ऐटमबम तक हमारी माद्दी और ज़ाहिरी ज़िन्दगी के फलने फूलने की कहानी है मगर कर्बला का वाक़ेया इसके तमाम जुज़ियात व मुज़ाहेरात हमारी रूहानी व मानवी हयात की एक मुसलसल दास्तान है जो आला अख़लाक़ी व इन्सानी अक़दार को अपने अन्दर समोये हुए वक़्त के अथाह समुन्दर में ज़मज़मा संज है और इसी तरह रहेगी यहाँ तक कि साहिले मुराद नज़र आए जहाँ फ़र्ज़ शनास इन्सानियत पहुँच कर अपने इनामात से बहरामन्द हो सके।

□□□